Dr. Sudhir Kumar Singh

Principal

Rohtas mahila college, sasaram

U. G. Notes sociology

B. A. (Hons.) Part 2

Paper 4th- सामाजिक शोध

Topic- सामाजिक शोध का अर्थ, उद्देश्य एवं चरण

सामाजिक शोध के अर्थ को समझने के पूर्व हमें शोध के अर्थ को समझना आवश्यक है। मनुष्यस्वभावत: एक जिज्ञाशील प्राणी है। अपनी जिज्ञाशील प्रकृति के कारण वह समाज वह प्रकृति मेंघटित विभिन्न घटनाओं के सम्बन्ध में विविध प्रश्नों को खड़ा करता है। और स्वयं उन प्रश्नों केउत्तर ढूढने का प्रयत्न भी करता है। और इसी के साथ प्रारम्भ होती है। सामाजिक अनुसंधानके वैज्ञानिक प्रक्रिया, वस्तुत: अनुसन्धान का उद्देश्य वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के प्रयोग द्वारा प्रश्नोंके उत्तरों की खोज करना है। स्पष्ट है कि, किसी क्षेत्र विशेष में नवीन ज्ञान की खोज या पुरानेज्ञान का पुन: परीक्षण अथवा दूसरे तरीके से विश्लेषण कर नवीन तथ्यों का उद्घाटन करनाशोध कहलाता है। यह एक निरन्तर प्रक्रिया है, जिसमें तार्किकता, योजनाबद्धता एवं क्रमबद्धतापायी जाती है। जब यह शोध सामाजिक क्षेत्र में होता है तो उसे सामाजिक शोध कहा जाता है। प्राकृतिक एवं जीव विज्ञानों की तरह सामाजिक शोध भी वैज्ञानिक होता है क्योंकि इसमेंवैज्ञानिक विधियों की सहायता से निष्कर्षों पर पहुँचा जाता है। वैज्ञानिक विधियों से यहाँ आशयमात्र यह है कि किसी भी सामाजिक शोध को पूर्ण करने के लिए एक तर्कसंगत शोध प्रक्रिया सेगुजरना होता है। शोध में वैज्ञानिकता का जहाँ तक प्रश्न है, इस पर भी विद्वानों केअलग-अलग मत हैं। रीड (1995:2040) का मानना है कि, "शोध हमेशा वह नही होता जिसेआप 'वैज्ञानिक' कह सकें। शोध कभी-कभी उपयोगी जानकारी एकत्र करने तक सीमित होसकता है। बहुधा ऐसी जानकारी किसी कार्य विशेष का नियोजन करने और महत्वपूर्ण निर्णयोंको लेने हेतु बहुत महत्वपूर्ण होती है। इस प्रकार के शोध कार्य में एकत्र की गयी सामग्रीतदन्तर सिद्धान्त निर्माण की ओर ले जा सकती है।"

सामाजिक शोध को और भी स्पष्ट करने के लिए हम कुछ विद्वानों की परिभाषाओं का उल्लेखकर सकते हैं। पी.ण्वी. यंग (1960:44) के अनुसार, "हम सामाजिक अनुसंधान को एक वैज्ञानिककार्य के रूप में परिभाषित कर सकते हैं, जिसका उद्देश्य तार्किक एवं क्रमबद्ध पद्धतियों के द्वारानवीन तथ्यों की खोज या पुराने तथ्यों को, और उनके अनुक्रमों, अन्तर्सम्बन्धों, कारणों एवंउनको संचालित करने वाले प्राकृतिक नियमों को खोजना है।"

सी.ए. मोज़र (1961 :3) ने सामाजिक शोध को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "सामाजिकघटनाओं एवं समस्याओं के सम्बन्ध में नये ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित अन्वेषण को हमसामाजिक शोध कहते हैं।" वास्तव में देखा जाये तो, 'सामाजिक यथार्थता की अन्तर्सम्बन्धितप्रक्रियाओं की व्यवस्थित जाँच तथा विश्लेषण सामाजिक शोध है।'स्पष्ट है कि विद्वानों ने सामाजिक शोध को अपनी-अपनी तरह से परिभाषित किया है। उनसभी की परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता हैं कि सामाजिक शोधसामाजिक जीवन के विविध पक्षों का तार्किक एवं व्यवस्थित अध्ययन है, जिसमें कार्य-कारणसम्बन्धों के आधार पर व्याख्या की जाती है। सामाजिक शोध की प्रासंगिकता तभी है जब किसीनिश्चित सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक संदर्भ संरचना के अन्तर्गत उसे सम्पादित किया जाये।सामाजिक अनुसन्धानकर्त्ता किसी अध्ययन समस्या से सम्बन्धित दो आधारभूत शोध प्रश्नों कोउठाता है- (प) क्या हो रहा है? और (पप) क्यों हो रहा है? अध्ययन समस्या का 'क्या हो रहाहै?' प्रश्न का यदि को उत्तर खोजता है और उसे देता है तो उसका शोध कार्य विवराणात्मकशोध की श्रेणी में आता है। 'क्यों हो रहा है?' 'का उत्तर देने के लिए उसे कारणात्मक सम्बन्धोंकी खोज करनी पड़ती है। इस प्रकार का शोध कार्य व्याख्यात्मक शोध कार्य होता है जो किसिद्धान्त में परिणत होता है। यह सामाजिक घटनाओं के कारणों पर प्रकाश डालता है तथाविविध

परिवत्र्यों के मध्य सम्बन्ध स्पष्ट करता है।

सामाजिक शोध का उद्देश्य

सामाजिक शोध का प्राथमिक उद्देश्य चाहे वह तात्कालिक हो या दूरस्थ-सामाजिक जीवन कोसमझना और उस पर अधिक नियंत्रण पाना है। इसका तात्पर्य यहनहीं समझा जाना चाहिए कि सामाजिक शोधकर्ता या समाजशास्त्री को समाजसुधारक,नैतिकता का प्रचार-प्रसार करने वाला या तात्कालिक सामाजिक नियोजनकर्ता होता है।बहुसंख्यक लोग समाजशास्त्रियों से जो अपेक्षा रखते हैं, वह वास्तव में समाजशास्त्र के विषयक्षेत्र के बाहर की होती है। इस सन्दर्भ में पी.वी. यंग (1960 : 75) ने उचित ही लिखा है कि'सामाजिक शोधकर्ता न तो व्यावहारिक समस्याओं और न तात्कालिक सामाजिक नियोजन,उपचारात्मक उपाय, या सामाजिक सुधार से सम्बन्धित होता है। वह प्रशासकीय परिवर्तनों औरप्रशासकीय प्रक्रियाओं के परिष्करण से सम्बन्धित नही होता। वह अपने को जीवन और कार्य,कुशलता और कल्याण के पूर्व स्थापित मापदण्डों द्वारा निर्देशित नहीं करता है और सामाजिकघटनाओं को सुधार की दृष्टि से इन मापदण्डों के परिपे्रक्ष्य में मापता भी नहीं है। सामाजिकशोधकर्ता की मुख्य रुचि सामाजिक प्रक्रियाओं की खोज और विवेचन, व्यवहार के प्रतिमानों,विशिष्ट सामाजिक घटनाओं और सामान्यत: सामाजिक समूहों में लागू होने वाली समानताओंएवं असमानताओं में होती है।

सामाजिक शोध के कुछ अन्य उद्देश्य हैं, पुरातन तथ्यों का सत्यापन करना, नवीन तथ्यों कोउद्घाटित करना परिवत्र्यों-अर्थात विभिन्न चरों के बीच कार्य-कारण सम्बन्ध ज्ञात करना, ज्ञानका विस्तार करना, सामान्यीकरण करना तथा प्राप्त ज्ञान के आधार पर सिद्धान्त का निर्माणकरना है। सामाजिक शोध से प्राप्त सूचनाएँ सामाजिक नीति निर्माण अथवा जीवन के गुणवत्तामें सुधार अथवा सामाजिक समस्याओं के समाधान में सहायक हो सकती हैं। व्यावहारिक दृष्टिसे देखा जाय तो इसे उपयोगितावादी कहा जा सकता है।

गुडे तथा हाट (1952) ने सामाजिक अनुसंधान को दो भागों- सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक मेंरखते हुए इसके उद्देश्यों को अलग-अलग स्पष्ट किया है। उनका कहना है कि सैद्धान्तिकसामाजिक अनुसन्धान का मुख्य उद्देश्य नवीन तथ्यों को ज्ञात करना, सिद्धान्त की जाँच करना,अवधारणात्मक स्पष्टीकरण में सहायक होना तथा उपलब्ध सिद्धान्तों को एकीकृत करना है।व्यावहारिक अनुसन्धान का उद्देश्य व्यावहारिक समस्याओं के कारणों को ज्ञात करना और उनकेसमाधानों का पता लगाना नीतिनिर्धारण हेतु आवष्यक सुधार प्रदान करना होता है।

सामाजिक शोध के चरण

सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक होती है। वैज्ञानिक प्रकृति से तात्पर्य यह है कि इसमेंसमस्या विशेष का अध्ययन एक व्यवस्थित पद्धति के अनुसार किया जाता है। अध्ययन केनिष्कर्ष पर इस प्रकार पहुँचा जाता है कि उसके वैषयिकता के स्थान पर वस्तुनिष्ठता होती है।शोध की सम्पूर्ण प्रक्रिया विविध सोपानों से गुजरती है। इन्हें सामाजिक शोध के चरण भी कहाजाता है। एक चरण से दूसरे चरण में प्रवेश करते हुए अध्ययन को आगे बढ़ाया जाता है।सामाजिक शोध में कितने चरण होते हैं, इसमें विद्वानों में एकमत्य नही है। इसी तरह, शोध मेंचरणों का नामकरण भी विद्वानों ने अलग-अलग तरह से किया है। शोध के बीच के कुछ चरणआगे-पीछे हो सकते हैं, उससे शोध की वैज्ञानिकता पर को दुष्प्रभाव नही पड़ता है।हम यहाँ पहले कुछ विद्वानों द्वारा बताये शोध के चरणों का उल्लेख करेंगे, तत्पश्चात् सामाजिकशोध के महत्वपूर्ण चरणों की संक्षिप्त विवेचना करेंगे।

स्लूटर (1926 :5) ने सामाजिक शोध के पन्द्रह चरणों का उल्लेख किया है, जो इस प्रकारहैं-

शोध विषय का चुनाव।

शोध समस्या को समझने के लिए क्षेत्र सर्वेक्षण।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची का निर्माण।

समस्या को परिभाषित या निर्मित करना।

समस्या के तत्वों का विभेदीकरण और रूपरेखा निर्माण।

आँकड़ों या प्रमाणों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्धों के आधार पर समस्या के तत्वों कावर्गीकरण।

समस्या के तत्वों के आधार पर आँकड़ों या प्रमाणों का निर्धारण।

वांछित आँकड़ों या प्रमाणों की उपलब्धता का अनुमान लगाना।

समस्या के समाधान की जाँच करना।

आँकड़ों तथा सूचनाओं का संकलन।

आँकड़ों को विश्लेषण के लिए व्यवस्थित एवं नियमित करना।

आँकड़ों एवं प्रमाणों का विश्लेषण एवं विवेचन।

प्रस्तुतीकरण के लिए आँकडों को व्यवस्थित करना।

उद्धरणों, सन्दर्भों एवं पाद् टिप्पणीयों का चयन एवं प्रयोग।

शोध प्रस्तुतीकरण के स्वरूप और शैली को विकसित करना।

इग्नु (इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय) की पाठ्यपुस्तक (डैव् 002 शोध पद्धतियाँऔर विधियाँ, 2006, पृ. 32) में सामाजिक शोध के चरणों को निम्नवत् प्रस्तुत किया गया है।

शोध समस्या को परिभाषित करना।

↓

शोध विषय पर प्रकाशित सामग्री की समीक्षा करना।

↓

अध्ययन के व्यापक दायरे और इका को तय करना।

↓

प्राकल्पना का सूत्रीकरण और परिवर्तियों को बताना।

↓

शोध विधियों और तकनीकों का चयन।

↓

शोध का मानकीकरण

↓

मार्गदश्र्ाी अध्ययन/सांख्यकीय व अन्य विधियों का प्रयोग

↓

शोध सामग्री इकठ्ठा करना।

↓

सामग्री का विश्लेषण करना

↓

व्याख्या करना और रिपोर्ट लिखना

राम आहूजा (2003:125) ने मात्र छ: चरणों का उल्लेख किया है, जो कि निम्नवत् हैं-

अध्ययन समस्या का निर्धारण।

शोध प्रारुप तय करना।

निदर्शन की योजना बनाना (सम्भाव्यता या असम्भाव्यता अथवा दोनों)

आँकड़ा संकलन

आँकड़ा विश्लेषण (सम्पादन, संकेतन, प्रक्रियाकरण एवं सारणीयन)।

प्रतिवेदन तैयार करना।

सी. आर. कोठारी (2005:12) ने शोध प्रक्रिया के ग्यारह चरणों का उल्लेख किया है, जो निम्नवत्हैं-

शोध समस्या का निर्माण।

गहन साहित्य सर्वेक्षण

उपकल्पना का निर्माण

शोध प्रारुप निर्माण

निदर्शन प्रारुप निर्धारण

आँकड़ा संकलन

प्रोजेक्ट का सम्पादन

आँकड़ों का विश्लेषण

उपकल्पनाओं का परीक्षण।

सामान्यीकरण और विवेचन, और

रिपोर्ट तैयार करना या परिणामों का प्रस्तुतीकरण यानि निष्कर्षों का औपचारिक लेखन।

शोध के उपरोक्त विविध चरणों को हम निम्नांकित रूप से सीमित कर सामाजिक शोध क्रमश:कर सकते हैं।

प्रथम चरण-

शोध प्रक्रिया में सबसे पहला चरण समस्या का चुनाव या शोध विषय का निर्धारणहोता है। यदि आपको किसी विषय पर शोध करना है तो स्वाभाविक है कि सर्वप्रथम आप यहतय करेंगे कि किस विषय पर कार्य किया जाये। विषय का निर्धारण करना तथा उसकेसैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक पक्ष को स्पष्ट करना शोध का प्रथम चरण होता है। शोध विषयका चयन सरल कार्य नही होता है, इसलिए ऐसे विषय को चुना जाना चाहिए जो आपके समयऔर साधन की सीमा के अन्तर्गत हो तथा विषय न केवल आपकी रुचि का हो अपितुसमसामयिक हो। इस तरह आपके द्वारा चयनित एक सामान्य विषय वैज्ञानिक खोज के लिएआपके द्वारा विशिष्ट शोध समस्या के रूप में निर्मित कर दिया जाता है। शोध विषय केनिर्धारण और उसके प्रतिपादन की दो अवस्थाएँ होती हैं- प्रथमत: तो शोध समस्या को गहनएवं व्यापक रूप से समझना तथा द्वितीय उसे विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से प्रकारान्तर में अर्थपूर्णशब्दों में प्रस्तुत करना।

अक्सर शोध छात्रों द्वारा यह प्रश्न किया जाता है कि किस विषय पर शोध करें। इसी तरहअक्सर शोध छात्रों से यह प्रश्न किया जाता है कि आपने चयनित विषय क्यों लिया। दोनों हीस्थितियों से यह स्पष्ट है कि शोध के विषय या अध्ययन समस्या का चुनाव महत्वपूर्ण चरण है,जिसका स्पष्टीकरण जरूरी है, लेकिन अक्सर ऐसा होता नहीं है। अनेकों शोध छात्र अपने शोधविषय के चयन का स्पष्टीकरण समुचित तरीके से नहीं दे पाते हैं। विद्वानों ने अपने शोध विषयके चयन के तर्कों पर काफी कुछ लिखा है। हम यहाँ उनके तर्कों को प्रस्तुत नहीं करेंगे अपितुमात्र बनार्ड (1994) के उस सुझाव का उल्लेख करना चाहेगें जिसमें उसने शोधकर्ताओं को यहसुझाव दिया है कि वे स्वयं से निम्नांकित प्रश्न पूछें-

क्या आपको अपने शोध का विषय रूचिकर लगता है?

क्या आपके शोध विषय का वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव है?

क्या आपके पास शोध कार्य को सम्पादित करने के लिए पर्याप्त संसाधन है?

क्या शोध प्रश्नों को पूछने अथवा शोध की कुछ विधियों एवं तकनीकों के प्रयोग से आपकेसमक्ष किसी प्रकार की नीतिगत अथवा नैतिक समस्या तो नहीं आयेगी?

क्या आपके शोध का विषय सैद्धान्तिक रूप से महत्वपूर्ण और रोचक है?

निश्चित रूप से उपरोक्त प्रश्नों पर तार्किक तरीके से विचार करने पर उत्तम शोध समस्या काचयन सम्भव हो सकेगा।

द्वितीय चरण-

यह तय हो जाने के पश्चात् कि किस विषय पर शोध कार्य किया जायेगा,विषय से सम्बन्धित साहित्यों (अन्य शोध कार्यों) का सर्वेक्षण (अध्ययन) किया जाता है। इससेतात्पर्य यह है कि चयनित विषय से सम्बन्धित समस्त लिखित या अलिखित, प्रकाशित याअप्रकाशित सामग्री का गहन अध्ययन किया जाता है, ताकि चयनित विषय के सभी पक्षों कीजानकारी प्राप्त हो सके। चयनित विषय से सम्बन्धित सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक साहित्यतथा आनुभविक साहित्य का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। इस पर ही शोध कीसमस्या का वैज्ञानिक एवं तार्किक प्रस्तुतीकरण निर्भर करता है। कभी-कभी यह प्रश्न उठता हैकि सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण शोध की समस्या के चयन के पूर्व होना चाहिए कि पश्चात्।ऐसा कहा जाता है कि, 'शोध समस्या को विद्यमान साहित्य के प्रारम्भिक अध्ययन से पूर्व हीचुन लेना बेहतर रहता है।' (इग्नु 2006 : पृ. 33) यहाँ यह भी प्रश्न उठ सकता है कि बिना7विषय के बारे में कुछ पढ़े को कैसे अध्ययन समस्या का निर्धारण कर सकता है? विशेषकरतब जब आप यह अपेक्षा रखते हैं कि शोधकर्ता शोध के प्रथम चरण में ही अध्ययन की समस्याको निर्धारित निर्मित, एवं परिभाषित करे तथा उसके शोध प्रश्नों एवं उद्देश्यों को अभिव्यक्त करे।समस्या का चयन एवं उसका निर्धारण शोधकर्ता के व्यापक ज्ञान के आधार पर हो सकता है।तत्पश्चात् उसे उक्त विषय से सम्बन्धित सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक तथा विविध विद्वानों द्वाराकिये गये आनुभविक अध्ययनों से सम्बन्धित सामग्री का अध्ययन करना चाहिए। ऐसा करने सेउसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्बन्धित विषय पर किन-किन दृष्टियों से, किन-किन विद्वानोंने विचार किया है और विविध अध्ययनों के उद्देश्य, उपकल्पनाएं, कार्यविधिकी क्या-क्या रहीहै।'' साथ ही साथ विविध विद्वानों के क्या निष्कर्ष रहे हैं। इतना ही नहीं उन विद्वानों द्वाराझेली गयी समस्याओं या उसके द्वारा भविष्य के अध्ययन किये जाने वाले सुझाये विषयों की भीजानकारी प्राप्त हो जाती है। ये समस्त ज्ञान एवं जानकारियाँ किसी भी शोधकर्ता के लिएअत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं।

तृतीय चरण-

सम्बन्धित समस्त सामग्रियों के अध्ययनों के उपरान्त शोधकर्त्ता अपने शोध केउद्देश्यों को स्पष्ट अभिव्यक्त करता है कि उसके शोध के वास्तविक उद्देश्य क्या-क्या हैं। शोधके स्पष्ट उद्देश्यों का होना किसी भी शोध की सफलता एवं गुणवत्तापूर्ण प्रस्तुतीकरण के लिएआवश्यक है। उद्देश्यों की स्पष्टता अनिवार्य है। उद्देश्यों के आधार पर ही आगे कि प्रक्रिया निर्भरकरती है, जैसे कि तथ्य संकलन की प्रविधि का चयन और उस प्रविधि द्वारा उद्देश्यों के हीअनुरूप तथ्यों के संकलन की रणनीति या प्रश्नों का निर्धारण। यह कहना उचित ही है कि,'जब तक आपके पास शोध के उद्देश्यों का स्पष्ट अनुमान न होगा, शोध नही होगा और एकत्रितसामग्री में वांछित सुसंगति नही आएगी क्योंकि यह सम्भव है कि आपने विषय को देखा होजिस स्थिति में हर परिप्रेक्ष्य भिन्न मुद्दों से जुड़ा होता है। उदाहरण के लिए, विकास परसमाजशास्त्रीय अध्ययन में अनेक शोध प्रश्न हो सकते हैं, जैसे विकास में महिलाओं की भूमिका,विकास में जाति एवं नातेदारी की भूमिका अथवा पारिवारिक एवं सामुदायिक जीवन पर विकासके समाजिक परिणाम।' (इग्नु 2006 : 33-34) है।

चतुर्थ चरण-

शोध के उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात् अध्ययन की उपकल्पनाओं याप्राक्कल्पनाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने की जरुरत है। यह उल्लेखनीय है कि सभी प्रकारके शोध कार्यों में उपकल्पनाएँ निर्मित नहीं की जाती हैं, विशेषकर ऐसे शोध कार्यों में जिसमेंविषय से सम्बन्धित पूर्व जानकारियाँ सप्रमाण उपलब्ध नहीं होती हैं। अत: यदि हमारा शोध कार्यअन्वेषणात्मक है तो हमें वहाँ उपकल्पनाओं के स्थान पर शोध प्रश्नों को रखना चाहिए। इसदृष्टि से यदि देखा जाये तो स्पष्ट होता है कि उपकल्पनाओं का निर्माण हमेशा ही शोध प्रक्रियाका एक चरण नहीं होता है उसके स्थान पर शोध प्रश्नों का निर्माण उस चरण के अन्तर्गतआता है।

उपकल्पना या प्राक्कल्पना से तात्पर्य क्या हैं? और इसकी शोध में क्या आवश्यकता है? इत्यादिप्रश्नों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

लुण्डबर्ग (1951:9) के अनुसार, "उपकल्पना एक सम्भावित सामान्यीकरण होता है, जिसकीवैद्यता की जाँच की जानी होती है। अपने प्रारम्भिक स्तरों पर उपकल्पना को भी अटकलपच्चू,अनुमान, काल्पनिक विचार या सहज ज्ञान या और कुछ हो सकता है जो क्रिया या अन्वेषण काआधार बनता है।"

गुड तथा स्केट्स (1954 : 90) के अनुसार, "एक उपकल्पना बुद्धिमत्तापूर्ण कल्पना या निष्कर्षहोती है जो अवलोकित तथ्यों या दशाओं को विश्लेषित करने के लिए निर्मित और अस्थायी रूपसे अपनायी जाती है।"

गुडे तथा हॉट (1952:56) के शब्दों में कहा जाये तो, "यह (उपकल्पना) एक मान्यता है जिसकीवैद्यता निर्धारित करने के लिए उसकी जाँच की जा सकती है।"सरल एवं स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो, उपकल्पना शोध विषय के अन्तर्गत आने वाले विविधउद्देश्यों से सम्बन्धित एक काम चलाऊ अनुमान या निष्कर्ष है, जिसकी सत्यता की परीक्षा प्राप्ततथ्यों के आधार पर की जाती है। विषय से सम्बन्धित साहित्यों के अध्ययन के पश्चात् जबउत्तरदाता अपने अध्ययन विषय को पूर्णत: जान जाता है तो उसके मन में कुछ सम्भावितनिष्कर्ष आने लगते हैं और वह अनुमान लगाता है कि अध्ययन में विविध मुद्दों के सन्दर्भ में प्राप्ततथ्यों के विश्लेषण के उपरान्त इस-इस प्रकार के निष्कर्ष आएंगे। ये सम्भावित निष्कर्ष हीउपकल्पनाएँ होती हैं। वास्तविक तथ्यों के विश्लेषण के उपरान्त कभी-कभी ये गलत साबितहोती हैं और कभी-कभी सही। उपकल्पनाओं का सत्य प्रमाणिक होना या असत्य सिद्ध हो जानाविशेष महत्व का नहीं होता है। इसलिए शोधकर्त्ता को अपनी उपकल्पनाओं के प्रति लगाव यामिथ्या झुकाव नहीं होना चाहिए अर्थात् उसे कभी भी ऐसा प्रयास नहीं करना चाहिए जिससे किउसकी उपकल्पना सत्य प्रमाणित हो जाये। जो कुछ भी प्राथमिक तथ्यों से निष्कर्ष प्राप्त होंउसे ही हर हालात में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। वैज्ञानिकता के लिए वस्तुनिष्ठता प्रथम शर्त हैइसे ध्यान में रखते हुए ही शोधकर्ता को शोध कार्य सम्पादित करना चाहिए। उपकल्पनाशोधकर्ता को विषय से भटकने से बचाती है। इस तरह एक उपकल्पना का इस्तेमाल दृष्टिहीनखोज से रक्षा करता है।

उपकल्पना या प्राक्कल्पना स्पष्ट एवं सटीक होनी चाहिए। वह ऐसी होनी चाहिए जिसका प्राप्ततथ्यों से निर्धारित अवधि में अनुभवजन्य परीक्षण सम्भव हो। यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिएकि एक उपकल्पना और एक सामान्य कथन में अन्तर होता है। इस रूप में यदि देखा जाय तोकहा जा सकता है कि उपकल्पना में दो परिवत्र्यो में से किसी एक के निष्कर्षों को सम्भावितथ्य में रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उपकल्पना परिवत्र्यो के बीच सम्बन्धों के स्वरूप कोअभिव्यक्त करती है। सकारात्मक, नकारात्मक और शून्य, ये तीन सम्बन्ध परिवत्र्यो के मध्य मानेजाते हैं। उपकल्पना परिवत्र्यो के सम्बन्धों को उद्घाटित करती है।उपकल्पना जो कि फलदायी अन्वेषण का अस्थायी केन्द्रीय विचार होती है (यंग 1960 : 96), केनिर्माण के चार स्रोतों का गुडे तथा हाट (1952 : 63-67) ने उल्लेख किया है-(i) सामान्य संस्कृति (ii) वैज्ञानिक सिद्धान्त (ii) सादृश्य (Anology) (iv) व्यक्तिगतअनुभव। इन्हीं चार स्रोतों से उपकल्पनाओं का उद्गम होता है।उपकल्पनाओं के बिना शोध अनिर्दिष्ट (unfocused), एक दैव आनुभविक भटकाव होता है।उपकल्पना शोध में जितनी सहायक है, उतनी ही हानिकारक भी हो सकती है। इसलिए अपनीउपकल्पना पर जरुरत से ज्यादा विश्वास रखना या उसके प्रति पूर्वाग्रह रखना, उसे प्रतिष्ठा काप्रश्न बनाना कदापि उचित नही है। ऐसा यदि शोधकर्ता करता है, तो उसके शोध में वैषयिकतासमा जायेगी और वैज्ञानिकता का अन्त हो जायेगा।

पंचम चरण-

समग्र एवं निदर्शन निर्धारण शोध कार्य का पाँचवा चरण होता है। समग्र कातात्पर्य उन सबसे है, जिन पर शोध आधारित है या जिन पर शोध किया जा रहा है। उदाहरणके लिए यदि हम किसी विश्वविद्यालय के छात्रों से सम्बन्धित किसी पक्ष पर शोध कार्य करने9जा रहे हैं, तो उस विश्वविद्यालय के समस्त छात्र अध्ययन का समग्र होंगे। इसी तरह यदि हमसामाजिक-आर्थिक विकासों का ग्रामीण महिलाओं पर प्रभाव का अध्ययन कर रहे हैं, तो चयनितग्राम या ग्रामों की समस्त महिलाएँ अध्ययन समग्र होंगी। चूँकि किसी भी शोध कार्य में समयऔर साधनों की सीमा होती है और बहुत बड़े और लम्बी अवधि के शोध कार्य में सामाजिकतथ्यों के कभी-कभी नष्ट होने का भय भी रहता है, इसलिए सामान्यत: छोटे स्तर (माइक्रो) केशोध कार्य को वरीयता दी जाती है। इस तथाकथित छोटे या लघु अध्ययन में भी सभी इकायोंका अध्ययन सम्भव नही हो पाता है, इसलिए कुछ प्रतिनिधित्वपूर्ण इकायों का चयन वैज्ञानिकआधार पर कर लिया जाता है। इसी चुनी हु इकायों को निदर्शन कहते हैं। सम्पूर्ण अध्ययनइन्हीं निदर्शित इकायों से प्राप्त तथ्यों पर आधारित होता है, जो सम्पूर्ण समग्र पर लागू होताहै। यंग (1960 : 302) के शब्दों में कहा जाये तो कह सकते हैं कि, ''एक सांख्यकीय निदर्शनउस सम्पूर्ण समूह अथवा योग का एक अतिलघु चित्र या 'क्रास सेक्शन' है, जिससे निदर्शनलिया गया है।''

समग्र का निर्धारण ही यह तय कर देता है कि आनुभविक अध्ययन किन पर होगा। इसी स्तरपर न केवल अध्ययन इकायों का निर्धारण होता है, अपितु भौगोलिक क्षेत्र का भी निर्धारणहोता है। और भी सरलतम रूप में कहा जाये तो इस स्तर में यह तय हो जाता है कि अध्ययनकहां (क्षेत्र) और किन पर(समग्र) होगा, साथ ही कितनों (निदर्शन) पर होगा।

उल्लेखनीय है कि अक्सर निदर्शन की आवश्यकता पड़ ही जाती है। ऐसी स्थिति में नमूने केतौर पर कुछ इकायों का चयन कर उनका अध्ययन कर लिया जाता है। ऐसे 'नमूने' हमदैनिक जीवन में भी प्राय: प्रयोग में लाते हैं। उदाहरण के लिए चावल खरीदने के लिए पूरे बोरेके चावलों को उलट-पलट कर नहीं देखा जाता है, अपितु कुछ ही चावल के दानों के आधारपर सम्पूर्ण बोरे के चावलों की गुणवत्ता को परख लिया जाता है। इसी तरह भगोने या कुकर मेंचावल पका है कि नहीं को ज्ञात करने के लिए कुकर के कुछ ही चावलों को उंगलियोंमसलकर चावल के पकने या न पकने का निष्कर्ष निकाल लिया जाता है। इस तरह यह स्पष्टहै कि ये जो 'कुछ ही चावल' सम्पूर्ण चावल का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, यानि जिनके आधार परहम उसकी गुणवत्ता या पकने का निष्कर्ष निकाल रहे हैं, निदर्शन (सैम्पल) ही है। गुडे औरहाट (1952 रू 209) का कहना है कि, ''एक निदर्शन, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है,किसी विशाल सम्पूर्ण का लघु प्रतिनिधि है।''

निदर्शन की मोटे तौर पर दो पद्धतियाँ मानी जाती हैं- एक को सम्भावनात्मक निदर्शन कहते हैं,और दूसरी को असम्भावनात्मक या सम्भावना-रहित निदर्शन। इन दोनों पद्धतियों के अन्तर्गतनिदर्शन के अनेकों प्रकार प्रचलन में हैं। निदर्शन की जिस किसी भी पद्धति अथवा प्रकार काचयन किया जाये, उसमें विशेष सावधानी अपेक्षित होती है, ताकि उचित निदर्शन प्राप्त हो सके।कभी-कभी निदर्शन की जरुरत नहीं पड़ती है। इसका मुख्य कारण समग्र का छोटा होना होसकता है, या अन्य कारण भी हो सकते हैं जैसे सम्बन्धित समग्र या इका का आँकड़ाअनुपलब्ध हो, उसके बारे में कुछ पता न हो इत्यादि। ऐसी परिस्थिति में सम्पूर्ण समग्र काअध्ययन किया जाता है। ऐसा ही जनगणना कार्य में भी किया जाता है, इसीलिए इस विधि को'जनगणना' या 'संगणना' विधि कहा जाता है, और इसमें समस्त इकायों का अध्ययन कियाजाता है। इस तरह यह स्पष्ट है कि, सामाजिक शोध में हमेशा निदर्शन लिया ही जायेगा यहजरूरी नहीं होता है, कभी-कभी बिना निदर्शन प्राप्त किये ही 'संगणना विधि' द्वारा भी अध्ययनइकायों से प्राथमिक तथ्य संकलित कर लिये जाते हैं।

छठवाँ चरण-

प्राथमिक तथ्य संकलन का वास्तविक कार्य तब प्रारम्भ होता है, जब हम तथ्यसंकलन की तकनीक/उपकरण, विधि इत्यादि निर्धारित कर लेते हैं। उपयुक्त और यथेष्ट तथ्यसंकलन तभी संभव है जब हम अपने शोध की आवश्यकता, उत्तरदाताओं की विशेषता तथाउपयुक्त तकनीक एवं प्रविधियों, उपकरणों/मापकों इत्यादि का चयन करें। प्राथमिक तथ्यसंकलन उत्तरदाताओं से सर्वेक्षण के आधार पर और प्रयोगात्मक पद्धति से हो सकता है।प्राथमिक तथ्य संकलन की अनेकों तकनीकें/उपकरण प्रचलन में हैं, जिनके प्रयोग द्वाराउत्तरदाताओं से सूचनाएँ एवं तथ्य प्राप्त किये जाते हैं। ये उपकरण या तकनीकें मौखिक अथवालिखित हो सकती हैं, और इनके प्रयोग किये जाने के तरीकें अलग-अलग होते हैं। शोध कीगुणवत्ता इन्हीं तकनीकों तथा इन तकनीकों के उचित तरीकें से प्रयोग किये जाने पर निर्भरकरती है। उपकरणों या तकनीकों की अपनी-अपनी विशेषताएँ एवं सीमाएँ होती हैं। शोधकर्त्ताशोध विषय की प्रकृति, उद्देश्यों, संसाधनों की उपलब्धता (धन और समय) तथा अन्य विचारणीयपक्षों पर व्यापक रूप से सोच-समझकर इनमें से किसी एक तकनीक (तथ्य एकत्र करने कातरीका) का सामान्यत: प्रयोग करता है। कुछ प्रमुख उपकरण या तकनीकें इस प्रकार हैं-प्रश्नावली, साक्षात्कार, साक्षात्कार अनुसूची, साक्षात्कार-मार्गदर्शिका (इन्टरव्यू गाड) इत्यादि।विधि से तात्पर्य सामग्री विश्लेषण के साधनों से है। प्राय: तकनीक/उपकरण और विधियों कोपरिभाषित करने में भ्रामक स्थिति बनी रहती है। स्पष्टता के लिए यहाँ उल्लेखनीय है कि विधिउपकरणों या तकनीकों से अलग किन्तु अन्तर्सम्बद्ध वह तरीका है जिसके द्वारा हम एकत्रितसामग्री की व्याख्या करने के लिए सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों का प्रयोग करते हैं। शोध कार्य मेंप्रक्रियात्मक नियमों के साथ विभिन्न तकनीकों के सम्मिलन से शोध की विधि बनती है। इसकेअन्तर्गत अवलोकन, केस-स्टडी, जीवन-वृत्त इत्यादि शोध की विधियाँ उल्लेखनीय हैं।

सप्तम चरण-

प्राथमिक तथ्य संकलन शोध का अगला चरण होता है। शोध के लिए प्राथमिकतथ्य संकलन हेतु जब उपकरणों एवं प्रविधियों का निर्धारण हो जाता है, और उन उपकरणों एवंतकनीकों का अध्ययन के उद्देश्यों के अनुरूप निर्माण हो जाता है, तो उसके पश्चात् क्षेत्र मेंजाकर वास्तविक तथ्य संकलन का अति महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ होता है। कभी-कभी उपकरणोंया तकनीकों की उपयुक्तता जाँचने के लिए और उसके द्वारा तथ्य संकलन का कार्य प्रारम्भकरने के पहले पूर्व-अध्ययन (पायलट स्टडी) द्वारा उनका पूर्व परीक्षण किया जाता है।

यदि को प्रश्न अनुपयुक्त पाया जाता है या को प्रश्न संलग्न करना होता है या और कुछसंशोधन की आवश्यकता पड़ती है तो उपकरण में आवश्यक संशोधन कर मुख्य तथ्य संकलनका कार्य प्रारम्भ कर दिया जाता है। सामान्यत: समाजशास्त्रीय शोध में प्राथमिक तथ्य संकलनको अति सरल एवं सामान्य कार्य मानने की भूल की जाती है। वास्तविकता यह है कि यह एकअत्यन्त दुरुह एवं महत्वपूर्ण कार्य होता है, तथा शोधकर्ता की पर्याप्त कुशलता ही वांछित तथ्योंको प्राप्त करने में सफल हो सकती है। शोधकर्ता को यह प्रयास करना चाहिए कि उसकाकार्य व्यवस्थित तरीके से निश्चित समयावधि में पूर्ण हो जाये। उल्लेखनीय है कि कभी-कभीउत्तरदाताओं से सम्पर्क करने की विकट समस्या उत्पन्न होती है और अक्सर उत्तरदाता सहयोगकरने को तैयार भी नहीं होते हैं। ऐसी परिस्थिति में पर्याप्त सुझ-बुझ तथा परिपक्वता कीआवश्यकता पड़ती है। उत्तरदाताओं को विषय की गंभीरता को तथा उनके सहयोग के महत्वको समझाने की जरुरत पड़ती है। उत्तरदाताओं से झूठे वादे नहीं करने चाहिए और न उन्हेंकिसी प्रकार का प्रलोभन देना चाहिए। उत्तरदाताओं की सहूलियत के अनुसार ही उनसे सम्पर्ककरने की नीति को अपनाना उचित होता है। यथासम्भव घनिष्ठता बढ़ाने के लिए (संदेह दूर11करने एवं सहयोग प्राप्त करने के लिए) प्रयास करना चाहिए। तथ्य संकलन अनौपचारिकमाहौल में बेहतर होता है। कोशिश यह करनी चाहिए कि उस स्थान विशेष के किसी ऐसेप्रभावशाली, लोकप्रिय, समाजसेवी व्यक्ति का सहयोग प्राप्त हो जाये जिसकी सहायता सेउत्तरदाताओं से न केवल सम्पर्क आसानी से हो जाता है। अपितु उनसे वांछित सूचनाएँ भीसही-सही प्राप्त हो जाती है।

यदि तथ्य संकलन का कार्य अवलोकन द्वारा या साक्षात्कार-अनुसूची, साक्षात्कार इत्यादि द्वाराहो रहा हो, तब तो क्षेत्र विशेष में जाने तथा उत्तरदाताओं से आमने-सामने की स्थिति मेंप्राथमिक सूचनाओं को प्राप्त करने की जरुरत पड़ती है। अन्यथा यदि प्रश्नावली का प्रयोगहोना है, तो शोधकर्ता को सामान्यत: क्षेत्र में जाने की जरूरत नहीं पड़ती है। प्रश्नावली कोडाक द्वारा और आजकल तो -मेल के द्वारा इस अनुरोध के साथ उत्तरदाताओं को प्रेषित करदिया जाता है कि वे यथाशीघ्र (या निर्धारित समयाविधि में) पूर्ण रूप से भरकर उसे वापसशोधकर्ता को भेज दें।

यदि शोध कार्य में क क्षेत्र-अन्वेषक कार्यरत हों, तो वैसी स्थिति में उनको समुचित प्रशिक्षणतथा तथ्य संकलन के दौरान उनकी पर्याप्त निगरानी की आवश्यकता पड़ती है। प्राय: अन्वेषकप्राथमिक तथ्यों की महत्ता को समझ नहीं पाते हैं, इसलिए वे वास्तविक तथ्यों को प्राप्त करने मेंविशेष प्रयास और रुचि नहीं लेते हैं। अक्सर तो वे मनगढ़न्त अनुसूची को भर भी देते हैं। इससेसम्पूर्ण शोधकार्य की गुणवत्ता प्रभावित न हो जाये, इसके लिए विशेष सावधानी तथा रणनीतिआवश्यक है ताकि सभी अन्वेषक पूर्ण निष्ठा एवं मानदारी के साथ प्राथमिक तथ्यों का संकलनकरें। तथ्य संकलन के दौरान आवश्यक उपकरणों जैसे टेपरिकार्डर, वायस रिकार्डर, कैमरा,विडियों कैमरा इत्यादि का भी प्रयोग किया जा सकता है। इनके प्रयोग के पूर्व उत्तरदाता कीसहमति जरूरी है।

प्राथमिक तथ्यों को संकलित करने के साथ ही साथ एकत्रित सूचनाओं की जाँच एवं आवश्यकसम्पादन भी करते जाना चाहिए। भूलवश छूटे हुए प्रश्नों, अपूर्ण उत्तरों इत्यादि को यथासमयठिक करवा लेना चाहिए। को नयी महत्वपूर्ण सूचना मिले तो उसे अवश्य नोट कर लेनाचाहिए।तथ्यों का दूसरा स्रोत है द्वितीयक स्रोत द्वितीयक स्रोत तथ्य संकलन के वे स्रोत होते है,जिनका विश्लेषण एवं निर्वचन दूसरे के द्वारा हो चुका होता है। अध्ययन की समस्या केनिर्धारण के समय से ही द्वितीयक स्रोतों से प्रात तथ्यों का प्रयोग प्रारम्भ हो जाता है और रिपोर्टलेखन के समय तक स्थान-स्थान पर इनका प्रयोग होता रहता है।

अष्ठम चरण :-

आठवाँ चरण वर्गीकरण, सारणीयन एवं विश्लेषण अथवा रिपोर्ट लेखन का होताहै। विविध उपकरणों या तकनीकों एवं प्रविधियों के माध्यम से एकत्रित समस्त गुणात्मक सामग्रीको गणनात्मक रूप देने के लिए विविध वर्गों में रखा जाता है, आवश्यकतानुसार सम्पादितकिया जाता है, तत्पश्चात् सारिणी में गणनात्मक स्वरूप (प्रतिशत सहित) देकर विश्लेषित कियाजाता है। कुछ वर्षो पूर्व तक सम्पूर्ण एकत्रित सामग्री को अपने हाथों से बड़ी-बड़ी कागज कीशीटों पर कोडिंग करके उतारा जाता था तथा स्वयं शोधकर्ता एक-एक केस/अनुसूची सेसम्बन्धित तथ्य की गणना करते हुए सारणी बनाता था। आज कम्प्यूटर का शोध कार्यों मेंव्यापक रूप से प्रचलन हो गया है। समाजवैज्ञानिक शोधों में कम्प्यूटर के विशेष सॉफ्टवेयरउपलब्ध हैं, जिनकी सहायता से सभी प्रकार की सारणियाँ (सरल एवं जटिल) शीघ्रातिशीघ्रबनायी जाती हैं। एस.पी.एस.एस. (स्टैटिस्टिकल पैकेज फार सोशल साइंसेज) एक ऐसा हीप्रोग्राम है, जिसका प्रचलन तेजी से बढ़ा है। समाजवैज्ञानिक शोधों में एस.पी.एस.एस. द्वारासारिणीयाँ बनायी जा रही हैं। विविध परिवत्र्यों में सह-सम्बन्ध तथा सांख्यकीय परीक्षण इसकेद्वारा अत्यन्त सरल हो गया है।

सारिणीयों के निर्मित हो जाने के पश्चात् उनका तार्किक विश्लेषण किया जाता है। तथ्यों मेंकार्य-कारण सम्बन्ध तथा सह-सम्बन्ध देखे जाते हैं। इसी चरण में उपकल्पनाओं की सत्यताकी परीक्षा भी की जाती है। सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुएसमस्त शोध सामग्री को व्यवस्थित एवं तार्किक तरीके से विविध अध्यायों में रखकर

विश्लेषितकरते हुए शोध रिपोर्ट तैयार की जाती है।

अध्ययन के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची तथा प्राथमिक तथ्य संकलन कीप्रयुक्त की गयी तकनीक (अनुसूची या प्रश्नावली या स्केल इत्यादि) को संलग्न किया जाता है।सम्पूर्ण रिपोर्ट/प्रतिवेदन में स्थान-स्थान पर विषय भी आवश्यकता के अनुसार फोटोग्राफ,डाग्राम, ग्राफ, नक्शे, स्केल इत्यादि रखे जाते हैं।

उपरोक्त रिपोर्ट लेखन के सन्दर्भ में ही उल्लेखनीय है कि, शोध रिपोर्ट या प्रतिवेदन का जोकुछ भी उद्देश्य हो, उसे यथासम्भव स्पष्ट होना चाहिए (मेटा स्पेन्सर, 1979 : 47)। सेल्टिज तथाअन्य (1959:443) का कहना है कि, रिपोर्ट में शोधकर्ता को निम्नांकित बातें स्पष्ट करनीचाहिए-

समस्या की व्याख्या करें जिसे अध्ययनकर्ता सुलझाने की कोशिश कर रहा है।

शोध प्रक्रिया की विवेचना करें, जैसे निदर्शन कैसे लिया गया और तथ्यों के कौन से स्रोतप्रयोग किए गये हैं।

परिणामों की व्याख्या करें।

निष्कर्षों को सुझायें जो कि परिणामों पर आधारित हों। साथ ही ऐसे किसी भी प्रश्न काउल्लेख करें जो अनुत्तरीत रह गया हो और जो उसी क्षेत्र में और अधिक शोध की मांग कररहा हो।

गेराल्ड आर लेस्ली तथा अन्य (1994:35) का कहना है कि, ‘‘समाजशास्त्रीय शोधों में विश्लेषणऔर व्याख्या अक्सर सांख्यिकीय नही होती। इसमें साहित्य और तार्किकता की आवश्यकता होतीहै। यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान अतिक्लिष्ट सांख्यिकीय पद्धति का भी प्रयोग करने लगेहैं। प्रत्येक समाजशास्त्री समस्या के सर्वाधिक उपयुक्त तरीकों जो सर्वाधिक ज्ञान एवं समझ पैदाकरने वाला होता है, के अनुरूप शोध और तथ्य संकलन तथा विश्लेषण को अपनाता है।उपागमों का प्रकार केवल अन्य समाजशास्त्रियों के शोध को स्वीकार करने तथा यह विश्वासकरने के लिए कि यह क्षेत्र में योगदान देगा कि इच्छा के कारण सीमित होता हैं।’’

अन्त में यह कहा जा सकता है कि, यद्यपि सभी शोधकर्त्ता समाजशास्त्रीय पद्धति के इन्हीं चरणोंसे गुजरते हैं तथापि क चरणों को दूसरी तरीके से प्रयोग करते हैं। गेराल्ड आर. लेस्ली13(1994:38) तथा अन्य का कहना है कि, ‘‘यह विविधता समाजशास्त्र को मजबूती प्रदान करती हैऔर अपने द्वारा अध्ययन की जाने वाली समस्याओं के विस्तार को बढ़ाती है।’’

सामाजिक शोध का अध्ययन क्षेत्र एवं सार्थकता

समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। स्वाभाविक है कि सामाजिक शोध का क्षेत्र भीअत्यन्त व्यापक होता है। सामाजिक शोध के विस्तृत क्षेत्र को कार्ल पियर्सन (1937 : 16) के इसकथन से आसानी से समझा जा सकता है कि, ‘‘सामाजिक शोध का क्षेत्र वस्तुत: असीमित है,और शोध की सामग्री अन्तहीन। सामाजिक घटनाओं का प्रत्येक समूह सामाजिक जीवन काप्रत्येक पहलू, पूर्व और वर्तमान विकास का प्रत्येक चरण सामाजिक वैज्ञानिक के लिए सामग्रीहै।’’ पी.वी. यंग (1977 : 34-98) ने सामाजिक शोध के क्षेत्र की व्यापक विवेचना करते हुएविविध विद्वानों के अध्ययनों यथा कूले, मीड

थामस, नैनकी, पार्क, बर्गेस, लिण्डस्, सी. राटमिल्स, एंगेल, कोमोरोस्की, मर्डाल, स्टॉफर, मर्डोक, मर्टन, गौर्डन, आलपोर्ट, ब्लूमर, बेल्स, मैजका विवरण प्रस्तुत किया है।

एक समाजशास्त्री सामाजिक जीवन की किसी विशिष्ट अथवा सामान्य घटना को शोध हेतुचयन कर सकता है। सामाजिक शोध के अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत मानव समाज व मानवजीवन के सभी पक्ष आते हैं। समाजशास्त्र की विविध विशेषीकृत शाखाओं यथा- ग्रामीणसमाजशास्त्र, नगरीय समाजशास्त्र, औद्योगिक समाजशास्त्र, वृद्धावस्था का समाजशास्त्र, युवाओंका समाजशास्त्र, चिकित्सा का समाजशास्त्र, विचलन का समाजशास्त्र, सामाजिक आन्दोलन,सामाजिक वहिष्करण, सामाजिक परिवर्तन, विकास का समाजशास्त्र, जेण्डर स्टडीज, कानून कासमाजशास्त्र, दलित अध्ययन, शिक्षा का समाजशास्त्र, परिवार एवं विवाह का समाजशास्त्रइत्यादि-इत्यादि से सामाजिक शोध का व्यापक क्षेत्र स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है।

सामाजिक शोध के उपरोक्त विस्तृत क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में यह कहना कदापि गलत न होगा किएक विस्तृत सामाजिक क्षेत्र के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान करके सामाजिक शोध अज्ञानताका विनाश करता है। जब हम वृद्धों की समस्याओं, मजदूरों के शोषण और उनकी शोचनीयकार्यदशाओं, बाल मजदूरी, महिला कामगारों की समस्याओं, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, बेकारी इत्यादिपर सामाजिक शोध करते हैं, तो उसके प्राप्त परिणामों से न केवल समाज कल्याण के क्षेत्र मेंसहायता प्राप्त होती है अपितु सामाजिक नीतियों के निर्माण के लिए भी आधार उपलब्ध होताहै। विविध सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित शोध कार्य कानून निर्माण की दिशा में भीयोगदान करते हैं। सामाजिक शोध से सैद्धान्तिक एवं अवधारणात्मक समझ विकसित होती है,कार्य-कारण सम्बन्ध ज्ञात होते हैं और अन्तत: विषय की उन्नति होती है। सामाजिक शोध नकेवल सामाजिक नियन्त्रण में सहायक होता है, अपितु सामाजिक शोध साामाजिक-आर्थिकप्रगति में भी सहायक होता है। सूचना क्रान्ति के इस युग में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया नेसमाजशास्त्रीय शोध के क्षेत्र को बढ़ा दिया है। पुराने विचार और सिद्धान्त अप्रासंगिक होते जारहे हैं। नवीन परिस्थितियों ने जटिल सामाजिक यथार्थ को नये सिद्धान्तों एवं विचारों से समझनेके लिए बाध्य कर दिया है। सामाजिक शोध के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक महत्व का हीपरिणाम है कि आज नीति निर्माता, कानूनविद्, पत्रकारिता जगत, प्रशासक, समाज सुधारक,स्वैच्छिक संगठन, बौद्धिक वर्ग के लोग इससे विशेष अपेक्षा रखते हैं।